सलौने भारतीय खिलौने नाम से उपलब्ध है। (सिर्फ 40 रुपये कीमत की इस किताब को एनबीटी ने प्रकाशित किया है)। ये खिलौने युगों से चलन में हैं। हर पीढ़ी ने इस खजाने को बढ़ाया है और उसे समाज की सम्पत्ति के रूप में अपने पीछे छोड़ गई है। 'इस्तेमाल करके फेंक दिए जाने वाले' सामानों से बनाए गए ये खिलौने पर्यावरण के अनुकूल हैं और गरीब से गरीब बच्चे भी इनका आनन्द ले सकते हैं। इनको बनाने में बच्चे कई तरह की सामग्री को काटना, छोटा करना, चिपकाना, जोड़ना, कील से ठोकना और आपस में जोड़कर कोई संरचना बनाना सीखते हैं। इससे वे उम्दा विज्ञान भी सीखते हैं।

विज्ञान की समस्या यह है कि लोग अभी भी अपने हाथ गन्दे नहीं करना चाहते। रट्टा लगाने, चॉक से लिखने और भाषण देने की विधि अब भी सब जगह हावी है। हर आदमी पाठ्यक्रम को कवर करना चाहता है। इस चक्कर में वह यह भूल जाता है कि शिक्षा का मुख्य लक्ष्य ही चीज़ों को अनकवर करना है।

बॉस्टन में बच्चों के संग्रहालय की रचनात्मक निदेशक और बड़े बदलाव लाने वाली किताब मेकिंग थिंग्स की लेखिका ऐन आयर वाइज़मैन ने अच्छे विज्ञान के मूलतत्व को सार रूप में इन शब्दों में पेश किया है:

ठीक है असफल होना

ठीक है गलतियाँ करना
वे तुम्हें बहुत कुछ सिखाएँगी।

ठीक है मनमाफिक समय लेना
ठीक है खुद के अनुकूल गति से चलना
ठीक है चीज़ों को अपने ढंग से करके देखना
ठीक है असफल होना

इसके भय से मुक्त हो,
अवसर है दोबारा कोशिश करने का

ठीक है दूसरों को बुद्धू दिखना
ठीक है औरों से अलग होना

ठीक है प्रतीक्षा करना,
जब तक मन भीतर से तत्पर ना हो
ठीक है प्रयोग करना (सुरक्षा में)

ठीक है हर 'करना चाहिए' से 'क्यों पूछना'
खास है तुम्हारा तुम होना
ज़रूरी है बेतरतीबी मचा देना,

और फिर सफाई करने को प्रस्तुत रहना
(अक्सर सृजन का काम बेतरतीबी मचाता है)

अरविन्द गुप्ता पुणे के चिल्ड्रन्स साइन्स सेन्टर में काम करते हैं। इस लेख में जिन किताबों का जिक्र किया गया है वे उनकी वैबसाइट http://arvindguptatoys.com पर देखी जा सकती हैं। उनका ई–मेल पता है: arvindguptatoys@gmail.com

---

विज्ञान की कक्षा में बच्चों की आवाज़

ज्योत्सना वीजापुरकर



विज्ञान की शिक्षा पर हुए अनेक शोधों ने यह दिखाया है कि बच्चों को विज्ञान की कक्षा में जो पढ़ाया जाता है उससे उनकी स्वयं की वैकल्पिक अवधारणाएँ बहुत भिन्न होती हैं। ज़्यादातर शिक्षण के प्रचलित तरीके बच्चों की एक गलत धारणा में संशोधन करके उसे दूसरी ऐसी धारणा में बदल देते हैं, जो फिर भी गलत ही होती है। अच्छी बात यह है कि शिक्षण से धारणा में बदलाव लाने में तो मदद मिलती है, परन्तु दुखद बात यह है कि अक्सर यह बदलाव वह नहीं होता जिसके बारे में शिक्षक ने सोचा था।

शोधकर्ताओं ने उजागर किया है कि पढ़ाए जाने के बावजूद बच्चे ढेर सारी वैकल्पिक अवधारणाओं को मानते हैं। यह तथ्य दर्शाता है कि कहीं पर कोई तो उन बातों को सुन रहा था जो बच्चे कहना चाहते थे। निश्चित रूप से आगे की छानबीन के लिए इस प्रकार के किसी सूत्र को शुरुआती बिन्दु बनाना होगा।

शिक्षकों के साथ काम करते हुए यह बात बार–बार निकल कर सामने आई कि बच्चों के अनेक विचार और अवधारणाएँ शिक्षकों के लिए बिल्कुल चौंकाने वाले होते हैं। मुझे यह देखकर धक्का–सा लगा कि बहुत बड़ी संख्या ऐसे शिक्षकों की है जो इस बात से अनजान होते हैं कि बच्चों के दिमाग में क्या चल रहा है। ऐसा क्यों है कि सालों पढ़ाने के बाद भी हमें यह अहसास नहीं हो पाता कि जो सिखाया जा रहा है और जो वह सीख रहा है, उसके बीच सम्बन्ध नहीं है?

मेरा विश्वास है कि इसका उत्तर उस ढर्रे में छिपा है जिस ढर्रे से हमारी विज्ञान की कक्षाएँ संचालित की जाती हैं।

एक आम कक्षा में जब शिक्षक कोई प्रश्न पूछता है तो एक या दो हाथ ऊपर उठते हैं। एक बच्चा अपेक्षित उत्तर दे देता है, उसे स्वीकृति मिल जाती है। कक्षा आगे बढ़ जाती है। अक्सर पूछे गए प्रश्न का पाठ्यपुस्तक के अनुसार कोई सही 'उत्तर', या कहें कि एक मात्र सही उत्तर होता है। कुछ बिरले मौकों

पर हो सकता है कि पाठ्यपुस्तक के बजाय कुछ मौलिक उत्तर आए। यहाँ भी बच्चे जल्दी ही समझ जाते हैं कि चाहा गया एकमात्र 'सही' उत्तर क्या है। यह उत्तर देकर वे शिक्षक को खुश कर देंगे। बच्चों के लिए स्कूल के जीवन के मायने हमेशा से ही शिक्षक को खुश करना या कम से कम उन्हें संतुष्ट करना रहे हैं। बच्चे चतुर होते हैं। यदि प्रश्नों में ही उत्तर की ओर इशारा ना भी हो, तब भी शिक्षक के लहज़े, शारीरिक हाव–भाव से बच्चों को सम्भावित उत्तर पर पहुँचने के इशारे मिल जाते हैं।

वर्षों पहले मैं पाँचवी कक्षा के बच्चों के साथ काम करती थी। उस दौरान कक्षा में हुई पारस्परिक बातचीत का एक दृश्य मुझे याद है जो यहाँ प्रस्तुत है।

मैंने पूछा कि, 'क्या किसी ने सूर्य पक्षी देखा है?'

'हाँ', कई बच्चों ने अपने हाथ उठाते हुए कहा।

'वह किस रंग का होता है?' मैंने पूछा

'पीला'। (चतुराई भरा अन्दाज़ा!! सूर्य पक्षी 'पीला' तो होना ही चाहिए।)

'ठीक है, वह कितना बड़ा होता है?'

कई बच्चे मुझे अपने हाथों से दिखाने लगे, हथेलियों को एक–दूसरे के आमने–सामने परन्तु अलग रखकर।

जैसे–जैसे किसी संकेत के लिए वे मेरे चेहरे के हाव–भावों का बड़े ही सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करते, उनकी हथेलियाँ धीरे–धीरे पास आतीं फिर धीरे से दूर हो जातीं। मैंने जान–बूझकर बनावटी चेहरा बना रखा था इसलिए उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था कि कहाँ रुकें! और इस तरह वे पकड़े गए।

ऐसी कक्षाओं में एक आम दृश्य यह रहता है कि जब बच्चे बोलते हैं (जो आमतौर पर कक्षा में अव्वल आने वाले एक या दो बच्चे रहते हैं), तो केवल शिक्षक सुनता है; अन्य बच्चे शायद उस उत्तर की ओर कोई ध्यान नहीं देते। यदि वे ध्यान देते भी हैं – और यदि वह उत्तर उनके द्वारा सोचे गए उत्तर के प्रतिकूल भी होता है – तब भी खुल कर कोई नहीं बोलता। कक्षा में बच्चे इस प्रकार की संस्कृति के आदी हो जाते हैं। हम सभी जिन्होंने कक्षा के बाहर बच्चों से बातचीत की है यह जानते हैं कि बच्चे कितनी बातें करते हैं। किस तरह वे कठिन और मौलिक प्रश्न पूछते हैं। माता–पिता अक्सर बहुत गर्व से इसका प्रदर्शन करते हैं। तब यह कितना अस्वाभाविक है कि वे विज्ञान की कक्षा में अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा को दबा लेते हैं!

इस कक्षा की तुलना ऐसी कक्षा से करें, जहाँ प्रत्येक बच्चा जो कहा जा रहा है, उसे सुनता है और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। ऐसी कक्षा जहाँ प्रत्येक बच्चे को न सिर्फ बोलने की अनुमति दी जाती है, बल्कि उसे बोलने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित भी किया जाता है। इसकी ज़रूरत खासतौर से कक्षा के शर्मीले बच्चों के लिए पड़ती है। बच्चों से भरी हुई कक्षा में कुछ तो संकोची होते हैं, कुछ उदासीन होते हैं और कुछ बहुत ज़ोर–शोर से शिक्षक का ध्यान अपनी ओर खींचने में लगे रहते हैं।

इस संस्कृति को कक्षा में अपनाने का ज़िम्मा शिक्षक के ऊपर है। एक बार जब इसे करने की तकनीकों को निर्धारित कर लिया जाता है, तब वे आसान यहाँ तक कि बहुत ही मामूली लगने लगती हैं, और इसी में उनकी शक्ति छिपी होती है।

हो सकता है कि कई बच्चे, जो किसी भी औपचारिक सभा में बड़े समूह के सामने बोलने में हिचकते हैं, ऐसा अपनी खिल्ली उड़ाए जाने के डर से करते हों। यह नियम, कि कोई भी किसी के प्रश्न या उत्तर पर नहीं हँसेगा, हमारे बहुत काम आया है। यह ज़रूर है कि इसे लागू करना कठिन है, क्योंकि हँसी तो अचानक ही फूट पड़ती है। लेकिन, ऐसे में उस बच्चे से कुछ उत्साहवर्धक कह देना – जैसा सामान्य शिष्टाचार हम अपने साथियों के बीच निभाते हैं – तत्काल स्थिति को बदल देता है।

उदासीन बच्चे, यह जानकर कि उनकी बात गम्भीरता से सुनी जाएगी, कक्षा में रुचि लेने लगते हैं। शुरुआत से ही यह तय कर देना महत्वपूर्ण है कि जब शिक्षक या किसी विद्यार्थी को कुछ कहना हो तो अन्य लोग उनकी बात ध्यान से सुनेंगे, और यदि वे चाहें तो अपनी प्रतिक्रिया देंगे। जब तक हम इसे लागू करने के लिए भरसक प्रयास नहीं करते, हमारी कक्षाओं में ज़्यादातर बच्चे दूसरे विद्यार्थियों की बातों को अनसुना करते रहेंगे। यदि कोई संवाद होता भी है, तो आमतौर पर वह शिक्षक–विद्यार्थी के बीच का संवाद बन कर रह जाता है। पर जब यह नियम लागू हो जाता है, तो विद्यार्थी–विद्यार्थी के बीच खुलकर संवाद होता है, जिसका संचालन शिक्षक करता है (ताकि संवाद पढ़ाये जा रहे विषय पर केन्द्रित रहे)।

अगर शुरुआत में ही यह सन्देश दे दिया जाता है कि शिक्षक हर बच्चे से अपेक्षा रखता है कि वह खुल कर बोले, ऐसा करने के लिए हर बच्चे को मौका देने का उसका पूरा इरादा है, तो कक्षा में आक्रामक रूप से ध्यान खींचने वाले बच्चे शान्त हो जाते हैं। लेकिन उन्हें हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए बल्कि दूसरों के समान ही उन्हें भी बोलने का मौका दिया जाना चाहिए।

यह हो सकता है कि प्रत्येक कक्षा में हरेक बच्चे से बुलवाना सम्भव न हो। परन्तु अनुभव यह रहा है कि कुछ समय के बाद बच्चे खुल जाते हैं। कभी–कभी जब विरोधी दृष्टिकोण होते हैं, तो मैं उन्हें हाथ उठाने के लिए कहती हूँ कि वे किस विचार से सहमत हैं। यदि कुछ बच्चे अपने हाथ बिल्कुल ही नहीं उठाते तो इसमें भी कोई हर्ज नहीं। हमारी कक्षाओं में उन्होंने सीखा है कि पक्का न होना भी ठीक है। अगला स्वाभाविक प्रश्न पूछें, 'हम सही बात का

कैसे पता कर सकते हैं?' और लीजिए कक्षा में विज्ञान का वास्तविक अभ्यास शुरू हो जाता है।

जब कुछ कहने के नकारात्मक परिणाम नहीं होते, तब सही मायनों में विचारों की खोज शुरू होती है। कभी-कभी कोई बहुत ही होशियार बच्चा बहुत अद्भुत उत्तर देता है जिसमें 'यदि' और 'परन्तु' भी समाए रहते हैं। परन्तु शिक्षक के लिए अच्छा यही होगा कि वह तुरन्त ही उस उत्तर की श्रेष्ठता को स्वीकार न करे, जब तक कि बाकी कक्षा से यह नहीं पूछ लिया जाता कि वे क्या सोचते हैं। अन्यथा कोई भी अपना स्वयं का उत्तर ढूँढ़ने के लिए प्रेरित नहीं होगा। और हाँ, जब सभी अपनी बात कह चुके हों, तब पहले उत्तर को ज़रूर सराहा जाना चाहिए।

कक्षा के इस प्रकार के वातावरण में शिक्षक यह जानता है कि बच्चे क्या सोचते हैं। शिक्षक के लिए यह जानना क्यों महत्वपूर्ण है? पाठ्यक्रम तैयार है, पाठ्यपुस्तकें लिख दी गई हैं और निर्धारित कर दी गई हैं, अक्सर किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा जो वास्तविक शिक्षण प्रक्रिया से बहुत दूर है। ठीक इसीलिए यह बेहद ज़रूरी है कि शिक्षकों को यह पता चलना चाहिए कि क्या काम आया और क्या असफल हुआ। वे इस लम्बी शृंखला की अन्तिम और सबसे अहम कड़ी हैं, तंत्र को उसके प्रयासों का परिणाम बताने (फीडबैक देने) के लिए शिक्षक से बेहतर कौन हो सकता है?

> *सिर्फ इसलिए कोई चीज़ अनुपयोगी नहीं हो जाती क्योंकि उसने आपकी अपेक्षा के अनुसार काम नहीं किया।*
>
> *– थॉमस ए. एडीसन*

बच्चों के वैकल्पिक विचारों को जान लेने के अलावा कक्षा की इस संस्कृति के और भी कहीं ज़्यादा बड़े लाभ हैं। बच्चे वाकई कक्षा में सक्रिय भागीदारी करने लगते हैं। वे जानते हैं कि उनके विचार मायने रखते हैं। वे ज्ञान की प्रक्रिया से जुड़े द्वन्द्वों को सुलझाना तथा अपने और दूसरों के उत्तरों का समीक्षात्मक ढंग से मूल्यांकन करना सीखते हैं।

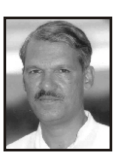
और इस प्रकार संसार की उस अद्भुत खोज की ओर उनकी यात्रा प्रारम्भ होती है जिसे हम विज्ञान कहते हैं।

ज्योत्सना वीजापुरकर, होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (होमी भाभा सेन्टर फॉर साइन्स ऐजुकेशन), टीआईएफआर के अध्यापक-मण्डल में हैं। वर्तमान में उनका मुख्य प्रोजेक्ट, कक्षा की गहन शोध पर आधारित पाठ्यक्रम की रूपरेखा बनाना और उसे क्रियान्वित करना है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : jvijapurkar@gmail.com

---

साकार से निराकार की ओर

जी.एस.जयदेव



मैं वास्तव में गणित से नफरत नहीं करता। पर लम्बे समय तक मैं यह मानता रहा कि कई विभिन्न कारणों से मुझे इस विषय से नफरत थी। सबसे ठोस कारण तो वह विधि थी जिससे गणित पढ़ाया जाता था। खासकर तानाशाह अध्यापक और उसकी छड़ी ने गणित को बहुत डरावना विषय बना दिया था। लगभग चालीस वर्ष बाद पीछे मुड़ कर देखने के बाद मुझे समझ में आया कि गणित को अच्छे से सीखने के लिए मैं निश्चित रूप से काबिल था। यह मेरा दुर्भाग्य रहा कि स्कूल में हर दूसरी घटना मुझे यह मानने को मजबूर कर देती थी कि मैं कभी गणित नहीं सीख सकता। इसमें मेरे सभी शुभचिन्तकों की गहरी सहानुभूति भी शामिल थी।

क्या गड़बड़ी हुई? असल में इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान है। संख्याएँ कभी भी किसी वास्तविक स्थूल वस्तु को नहीं दर्शाती थीं। वे तो बस चिन्ह थीं जो जीवन से रहित शून्य में किसी जटिल पहेली के अलग-अलग हो गए टुकड़ों की भाँति तैरती रहती थीं। उन्हें एक साथ रखना क्यों ज़रूरी था इसका कोई कारण पता नहीं था, और यदि रख भी दी जातीं तो भी वे पहले की तरह ही प्राणहीन बनी रहतीं।

विज्ञान का उत्साही विद्यार्थी होने के कारण मैंने बाद में अपने कॉलेज के दिनों में गणित की महत्ता को महसूस किया। लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी। यदि यह मुझे रोज़मर्रा के जीवन के अनुभव से जुड़ी किसी चीज़ की तरह सिखाया गया होता हो तो शायद मैंने इसे सीख लिया होता।

अपने इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए, अब मैं अपने साथियों के साथ चामराजनगर के दीनबंधु स्कूल में गणित को बच्चों के लिए अत्यधिक मज़े और मस्ती के साथ सीखने का असली अनुभव बनाने की कोशिश कर रहा हूँ। गणित के पाठ जीवविज्ञान के भेष में प्रस्तुत किए जाते हैं जिससे अनुभव में जीवन्तता आती है।

अलग-अलग प्रकार के द्विबीजपत्रीय बीजों को काँच के जारों में बोया जाता है, ताकि बच्चे एक ही साथ जड़ों और तनों की वृद्धि का अवलोकन कर सकें। बीज फलियों, मटर, हरे चने आदि के होते हैं। प्रतिदिन बच्चे जड़ों और तनों की वृद्धि को मापते हैं, उसको दर्ज करते हैं। यह देखना रोचक होता है कि